पहले मुर्गी या अंडा

❑ सहजो सिंह

दूसरी भाषा के रूप में हिंदी

अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले हमारे आपके बच्चों की यह मजबूरी है कि वे अंग्रेजी में ही सोचें। आठ-दस साल की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते मातृभाषा से अंग्रेजी तक की उनकी यात्रा, हमारे चाहे-अनचाहे पूरी हो चुकी होती है। इस पड़ाव पर पहुंचने के बाद, भाषा जिन-जिन जरूरतों को पूरा करती है, चिंतन, संप्रेषण, मनोरंजन वे ज्यादातर अंग्रेजी से पूरी होने लगती हैं, इसलिए धीरे-धीरे उनके लिए मातृभाषा व साथ में भाषायी संस्कृति भी अप्रासंगिक होती चली जाती है।

अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाएं पढ़ाने वाले शिक्षकों की स्थिति ऐसे में बड़ी अटपटी और अलग-थलग हो जाती है जब वास्तविकता को स्वीकार करने के बजाए वे अपनी दुनिया में ही सिमटे रहना चाहें। ऐसे कुछ स्कूलों में आपको हिन्दी अध्यापक या तो बहुत गुस्सैल मिलेंगे या बेचारे से लगने वाले। यही स्थिति कभी-कभी और भी विकट हो जाती है क्योंकि ज्यादातर लोगों में सतह से जरा-सा नीचे मौजूद दक्षिणपंथी विचार, गुस्से और बेचारगी, दोनों ही स्थितियों में आसानी से अपनी औकात पर आ जाते हैं और ठीकरा फूटता है नई पीढ़ी के सर पर।

अब आप बताएं कि बात-बात पर अपने जमाने की दुहाई देने वाले व वर्तमान को धिक्कारने वाले ऐसे अध्यापकों को कौन से बच्चे पसंद करेंगे तो अब क्या किया जाए ? दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी कैसे पढ़ाई जाए ? खास तौर पर तब, जब ज्यादातर पाठ्यपुस्तकें भी पितृ-मातृ और देशभक्ति से ओत-प्रोत हैं और उपदेशात्मक नैतिक शिक्षा के अलावा उनका शायद ही कोई और लक्ष्य है।

दोहराने के लिए लेकिन यहां यह स्पष्ट कर लें कि हमारे आपके मन में सवाल एक से ही हैं या नहीं। मेरी समझ से तो दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी पढ़ाने की तीन मुश्किलें हैं :

1. बच्चों को हिन्दी भाषा स्पष्टत: प्रासंगिक नहीं दिखती बल्कि थोपी गई मालूम होती है।

2. बच्चों की दुनिया से कटे हुए अध्यापक उन्हें आकर्षित नहीं कर पाते हैं।

3. पाठ्यपुस्तकें उबाऊ और नीरस होती हैं।

एक और चीज यहां निश्चित करनी होगी कि आपकी सहानुभूति किसके साथ है। यकीनन आपकी सहानुभूति बच्चों के ही साथ होगी, क्योंकि यह उन्होंने नहीं तय किया कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो और न यह कि सफल ताकतवर लोगों की भाषा अंग्रेजी हो; यह आपने हमने तय किया है।

चलिए तो फिर तय करें कि इन तीनों मुश्किलों से कैसे जूझा जाए।

यदि हम यह मान लें कि हमारी दुनिया (हिंदी भाषायी

संस्कृति) बच्चों के लिए अप्रासंगिक हो गई है तो क्यों न हम उनकी दुनिया में चलें और यह जानें कि उन्हें क्या प्रिय है और क्या रुचिकर। मुझे लगता है कि बच्चे आपको अपनी दुनिया में शामिल कर जरूर खुश होंगे अगर आप थोड़ी देर के लिए अपनी 'महान परंपरा' को भूल सकें तो।

ऐसा करते ही आपकी गुस्सैल/बेचारे अध्यापक की छवि बदलने लगेगी। छवि ही क्यों, अगर आप तैयार हों तो आपके (क्षमा करें) रूढ़िवादी विचार भी बदलने लगेंगे। इसका बहुत सीधा-सादा कारण है कि किसी विचारधारावश नहीं बल्कि अपने सहज स्वभाव से ही बच्चे हर चीज पर प्रश्न उठाते हैं, कि नियमों की खींचतान करते हैं और हमेशा नए की खोज में रहते हैं जब तक कि हमारी व्यवस्था इन वृत्तियों को समाप्त नहीं कर देती।

बाल साहित्य के चरित्रों में भी यही उन्हें आकर्षित करता है। अपने दो साल के अध्ययन में मैंने यही पाया है कि पूरी दुनिया में वही किताबें बच्चों में सबसे ज्यादा प्रिय हैं जिनमें बच्चे बड़ों के बनाए हुए नियम तोड़ते हैं, हैरी पॉटर जैसे अच्छे बच्चे भी (हंस, जून 2004)। आप यह भी पाएंगे कि बच्चे सहज न्याय के घोर पक्षपाती होते हैं।

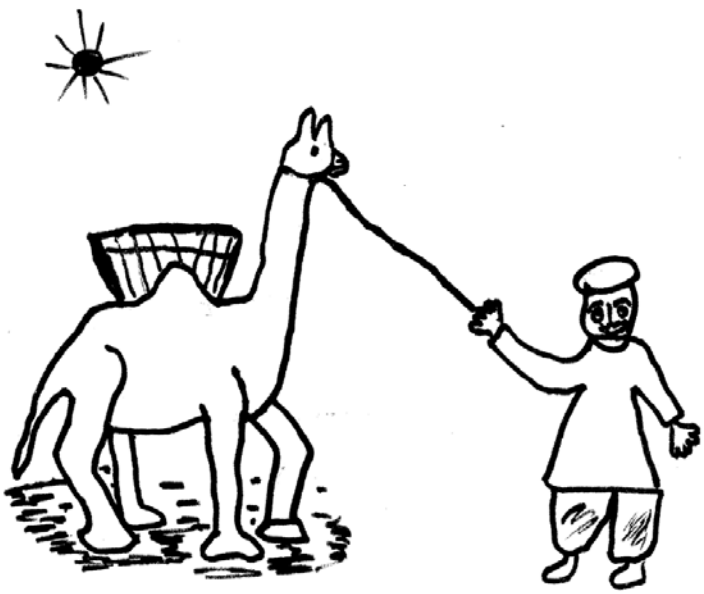

तो चलिए हमने बच्चों की दुनिया में शामिल होने की कोशिश की और बच्चों को अपने प्रति आकर्षित भी कर लिया, अब ? अब हमारा सामना तीसरी मुश्किल से है।

हो सकता है कि आप इस बात से सहमत न हों कि हिन्दी की ज्यादातर पाठ्यपुस्तकें नीरस और उपदेशात्मक होती हैं, या हो सकता है कि आपके हाथ कोई नायाब किताब लग गई हो। लेकिन अभी मैं उन लोगों से मुखातिब हूं जो जानते हैं कि हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें, हिन्दी को बाल प्रिय बनाने में उनकी ज्यादा मदद नहीं कर सकतीं।

वैसे तो आप खुद भी अच्छी सामग्री की खोज में लगे होंगे। इस खोज के पीछे यह उम्मीद भी होगी कि अगर थोड़ा-सा भी कुछ मजेदार मिल जाए तो बाकी का अनिवार्य विषयक्रम बच्चे कुछ आसानी से निगल लेंगे।

बहुत खोजा होगा आपने-किताबें, रिसाले, कॉमिक। मैंने भी खोजा, अमर चित्र कथा, चंदा मामा वगैरह। कुछ नए तरीके भी सोचे जैसे हिन्दी फिल्मों के गाने। लेकिन यह जल्दी ही पता चल गया कि गाने गानों तक ही सीमित रहते हैं। हो सकता है कि मेरी कोशिश काफी न रही हो पर यह भी सच है कि एकाध किताब मिलने से भी बात नहीं बनती। एकाध किताब या चन्द पत्रिकाओं से साहित्य नहीं बनता।

धीरे-धीरे एक प्रयोग करने का मन बना। हुआ यूं कि आंध्र प्रदेश में स्थित ऋषि वैली स्कूल में कुछ दिन बिताने का मौका मिला। वहां की अध्यक्ष के प्रोत्साहन और हिंदी संकाय की खुले दिल से मिली मदद से मुझ में यह प्रयोग करने का साहस हुआ।*

यह ठाना गया कि सातवीं कक्षा के छात्र अपनी मन पसंद अंग्रेजी की किताब का हिन्दी में अनुवाद करेंगे।

यह प्रयोग हमारी तीनों मुश्किलों को संबोधित करता था। पहले, यह सीधे बच्चों की दुनिया उनके अपने सरोकारों और रुचियों से वास्ता रखता था। दूसरे यह अध्यापकों को बच्चों की दुनिया में शामिल होने का शुद्ध निमंत्रण था और तीसरे बच्चों की रुचि की सामग्री ढूंढ़ने से छुटकारा दिलाता था।

सबसे पहले बच्चों की मर्जी पूछी गई, उनकी रजामंदी मिलने पर दो किताबों का बाकायदा चुनाव हुआ - नामांकन हुआ और वोट डाले गए।

दोनों किताबों के अध्याय बांट दिए गए फिर साथ काम करने की सुविधा देख दो-दो के जोड़े बनाए गए और पूरे स्कूल से अंग्रेजी

* यहां मैं राधिका हर्जबर्गर, विजेन्द्र रमोला और निर्मला रमोला के प्रति विशेष रूप से आभार प्रकट करना चाहूंगी।

से हिन्दी के शब्दकोष इकट्ठे किए गए।

इन बच्चों में से कई ऐसे थे जिनकी मातृभाषा तमिल या तेलुगू थी, कुछ बंगाली, कुछ एन.आर.आई. और कुछ विदेशी थे। हिन्दी जानने वाले बच्चे भी लिखने के मामले में इतने पक्के न थे। ऐसे में अनुवाद कुछ टेढ़ी खीर था।

इस तरह की कुछ दिक्कतें आईं, जैसे क-ख, ग-घ, व-ब-भ में भेद न कर सकने वाले बच्चे-बाघ, भाग और बाग तीनों में फर्क न कर पाए। शब्दकोष से ढूंढ़कर लिखे गए शब्द बहुत बार हास्यास्पद हो गए। उसके ऊपर लिंग-वचन की परेशानी। फिर भी बच्चे 15 दिन तक जूझते रहे और 44 में से दो बच्चों को छोड़कर सबने काम पूरा किया। हां सुधार करने में काफी समय लगा क्योंकि यह स्कूल के बाद खाली समय में करना होता था और खाली समय बच्चों के पास बहुत कम हुआ करता है। फिर मेरी यह जिद कि हर सुधार को समझ कर किया जाए। लेकिन फिर भी यह प्रयोग काफी हद तक सफल हुआ, यह सिर्फ इस बात से साबित होता है कि लगभग सभी बच्चे और किताबों का अनुवाद करना चाहते हैं, बल्कि वे यह चाहते हैं कि 15 दिन की कार्यशाला के बजाए अनुवाद उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा बना दिया जाए जो सप्ताह में कम से कम एक बार जरूर किया जाए।

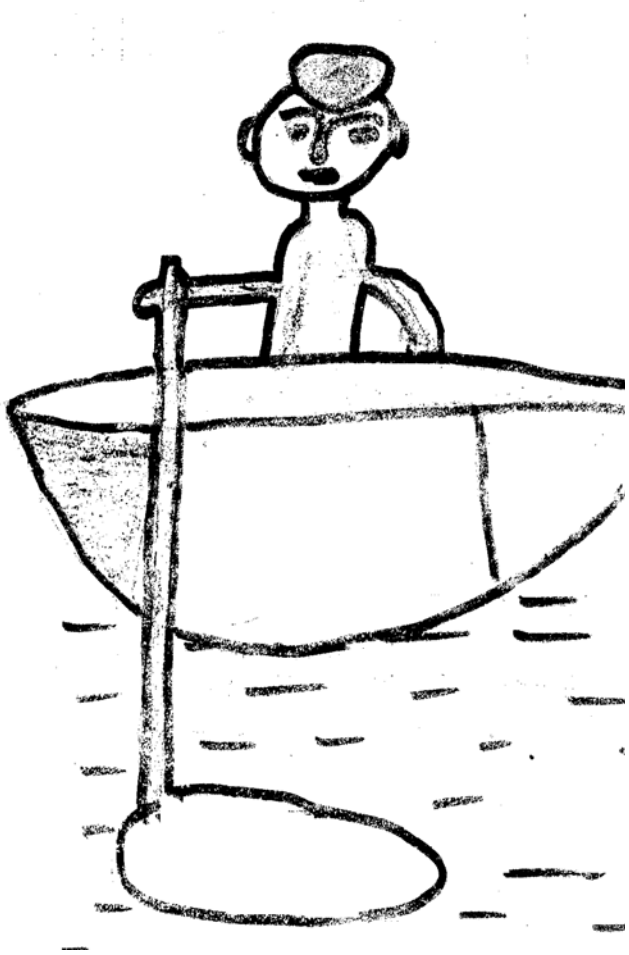

उनको शायद यह पता नहीं है कि कुछ दशक पहले उनके दादा-दादी के अंग्रेजी पाठ्यक्रम में अनुवाद एक जरूरी हिस्सा होता था और आज भी बहुत से स्कूलों में मातृभाषा के माध्यम से अंग्रेजी सिखाने के लिए किया जाता है।

खैर, उनकी अनुवाद की हुई किताबें अब हमने पुस्तकालय में रख दी हैं और उम्मीद है कि अभी यह संख्या बढ़ेगी। उनसे छोटे बच्चे इन्हें पढ़ रहे हैं और खुद भी जल्दी ही अपनी किताब बनाना चाहते हैं।

अंत में मैं यह स्पष्ट करना चाहती हूं कि यह प्रयोग हिंदी में आठ साल की उम्र से बड़े बच्चों के लिए बाल साहित्य की कमी को पूरा करने की कोशिश नहीं है बल्कि हिन्दी अध्यापकों के लिए एक सुझाव मात्र है।

मैं यह दोहराना चाहूंगी कि भाषा पाठ्यपुस्तकों से इतर ही सीखी जाती है खास तौर पर जब पाठ्यपुस्तकें बहुत रुचिकर न हों। लेकिन क्योंकि बच्चे हिन्दी पढ़ते नहीं तो किताबें उपलब्ध नहीं हैं, वही पहले मुर्गी कि अंडा।

ऐसे में पाठ्यक्रम सुधरने का इंतजार करना या किसी जागृत प्रकाशक की बाट जोहने से बेहतर है कि अध्यापक हिंदी को बच्चों के बीच लोकप्रिय बनाने का काम खुद अपने हाथों में लें। इसके कई तरीके हो सकते हैं, मैंने अनुवाद का तरीका चुना।

शायद इसलिए भी कि हिंदी का संसार जाति ग्रसित पितृसत्तात्मक संस्कारों को छोड़, थोड़ा और व्यापक बने। दूसरी भाषाओं से बच-बचाकर रहने की बजाए उनसे सबसे बेहतर कृतियां, मुहावरे, विचार ग्रहण करे और फिर से बच्चों के बीच कम से कम अपनी प्रासंगिकता हासिल करे।

यदि यह सिद्ध करना जरूरी हो तो उस छोटे से प्रदेश केरल को देखें। मलयालम का प्रकाशन उद्योग शायद देश में सबसे समृद्ध है और दुनिया भर से साहित्य का अनुवाद भारत में सबसे ज्यादा मलयालम में ही उपलब्ध है। ◆